पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 3614/2012

==========

राम जतन पाल, पुत्र-स्वर्गीय रघुनाथ प्रसाद पाल, वर्तमान में अवर न्यायाधीश के रुप में व्यवहार न्यायालय सुपौल, सहरसा जिला के अंतर्गत।

.....याचिकाकर्ता

बनाम

1. बिहार राज्य
2. पटना में उच्च न्यायालय में अपने महानिबंधक के द्वारा क्षेत्राधिकार
3. कानूनी अनुस्मारक-सह-विधि सचिव बिहार सरकार, पटना

.....प्रतिवादीगण

==========

के साथ

2013 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या- 11139

==========

राम जतन पाल, पुत्र- स्वर्गीय रघुनाथ प्रसाद पाल, वर्तमान में सहरसा न्यायाधीश पद के तहत व्यवहार न्यायालय-सुपौल, जिला-सुपौल में अवर-न्यायाधीश-III के पद पर तैनात।

..... याचिकाकर्ता

बनाम

1. बिहार राज्य
2. प्रधान सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार पटना।
3. संयुक्त सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार पटना।

4. पटना में उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार में अपने प्रशासनिक पक्ष की ओर से अपने महानिबंधक द्वारा।

5. महानिबंधक, पटना में उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार पटना में इसके प्रशासनिक पक्ष की ओर से।

..... प्रतिवादी/गण

==========

उपस्थिति:

(2012 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामले संख्या 3614 में)

याचिकाकर्ताओं के लिए	:	श्री मुकुल सिन्हा, अधिवक्ता
		श्री राजेश कुमार, अधिवक्ता
		श्री सुभाष चौधरी, अधिवक्ता
राज्य के लिए	:	श्री अशोक कुमार दुबे, ए.ए.जी-XI के ए.सी.
उत्तरदाताओं के लिए	:	श्री सत्यबीर भारती, अधिवक्ता
		श्री अभिषेक आनंद, अधिवक्ता
		सुश्री मनुप्रिया, अधिवक्ता

(2013 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामले संख्या 11139 में)

याचिकाकर्ताओं के लिए	:	श्री अंजु कुमारी उर्फ अंजू नारायण अधिवक्ता,
प्रत्यर्थी/ओं के लिए	:	श्री के.पी. गुप्ता, अधिवक्ता

==========

न्यायिक सेवा-विभागीय कार्यवाही- *याचिकाकर्ता के खिलाफ विभिन्न स्वत्वाधिकार वाद और धन की मांग से संबंधित छह आरोप बनाए गए थे, जब वह अवर न्यायाधीश VIII, सिवान के रूप में तैनात थे -विभागीय कार्यवाही के समापन के बाद, धन की मांग से संबंधित 3 आरोप साबित नहीं हुए, जबकि विभिन्न स्वत्वाधिकार वाद से संबंधित 3 आरोप साबित हुए-*

याचिकाकर्ता के खिलाफ स्थायी प्रभाव के साथ एक चरण में वेतन में कमी का दंड आदेश पारित किया गया- ***निर्णित किया गया;*** *एक दोष मुक्त विभागीय कार्यवाही की गई क्योंकि याचिकाकर्ता को आरोप का बयान, दस्तावेजों और गवाहों की सूची प्रदान की गई थी और याचिकाकर्ता को बचाव करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था - स्थायी प्रभाव के साथ एक चरण के वेतन में कमी के दंड आदेश को उचित ठहराया गया।*

बिहार सेवा संहिता-नियम 74 (बी) (ii)-अनिवार्य सेवानिवृत्ति- *याचिकाकर्ता के पूरे सेवा अभिलेख के मूल्यांकन और मूल्यांकन के बाद, स्थायी समिति द्वारा जनहित में सेवा से उनकी सेवानिवृत्ति की सिफारिश की गई थी और पूर्ण न्यायालय के प्रस्ताव द्वारा पुष्टि की गई थी- निर्णित - लोक हित पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश एक गैर-कलंकित आदेश है क्योंकि यह कदाचार के किसी भी आरोप पर आधारित नहीं है और न ही यह लगाया गया जुर्माना है-सार्वजनिक हित में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने के निर्णय पर पहुंचने के लिए नियोक्ता द्वारा अधिकारी द्वारा समग्र आचरण और कर्तव्यों के निर्वहन की जांच की जाती है-याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का उच्च न्यायालय का निर्णय उचित है क्योंकि उसकी पूरी सेवा में केवल एक बार "अच्छे अधिकारी" की टिप्पणी दी गई थी, लेकिन उसके बाद, उसे एक औसत अधिकारी-रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया।*

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

कोरम: माननीय मुख्य न्यायमूर्ति

एवं

माननीय न्यायाधीश श्री राजीव रॉय

सी. ए. वी. निर्णय

(द्वारा: माननीय न्यायाधीश श्री राजीव रॉय)

तिथिः 26.02.2024

याचिकाकर्ता द्वारा दो रिट याचिकाएं दायर की गई हैं। 2012 की सी. डब्ल्यू. जे. सी. संख्या 3614 को निम्नलिखित राहतों के अनुदान के लिए दायर की गई हैः

(i) याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी सं.-2 द्वारा जारी किए गए ज्ञाप सं. 15491 के माध्यम से आदेश दिनांकित 19 सितंबर, 2011 को रद्द करने के वास्ते प्रार्थना की है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को "स्थायी प्रभाव के साथ एक चरण तक वेतन में कमी" की सजा दी गई है। यह सजा याचिकाकर्ता को छह में से तीन आरोपों में दोषी ठहराते हुए एक विभागीय कार्यवाही के अनुसरण में दी गई है;

(ii) याचिकाकर्ता, प्रत्यर्थी सं.2 द्वारा जारी किए गए ज्ञाप सं. 15080 द्वारा उसमें निहित आदेश दिनांकित 15 सितंबर, 2011 के भाग को रद्द करने की भी प्रार्थना की है जिसके द्वारा निलंबन को निरस्त कर दिया गया है और यह निर्देश दिया गया है कि याचिकाकर्ता को निलंबन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ते के अलावा कोई सेवा/मौद्रिक लाभ नहीं दिया जाएगा;

(iii) आगे याचिकाकर्ता सभी वेतन एवं अन्य भत्ते जिनके वास्ते वह (याचिकाकर्ता) निलंबन की अवधि के दौरान हकदार है, का उसे भुगतान करने के वास्ते उचित निर्देश के लिए प्रार्थना करता है।

2. दूसरी रिट याचिका सं 2013 के 11139 को उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति को चुनौती देते हुए दायर की गई है और निम्नानुसार राहत मांगी गई हैः-

(i) प्रत्यर्थी संयुक्त सचिव, बिहार सरकार, पटना द्वारा जारी अधिसूचना दिनांकित 9.2.2012 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट सहित एक रिट जारी करना, जैसा कि अनुलग्नक 14 में निहित है जिसके द्वारा एवं जिसके तहत याचिकाकर्ता को बिहार सेवा संहिता के नियम 74(बी)(ii) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अनिवार्य रुप से सेवा से सेवानिवृत्त किया गया है, जो अधिसूचना जारी करने की तिथि से प्रभावी है जिसमें कहा गया है कि यह पत्र सं.-18274, दिनांकित 18.11.2011 में किए गए सिफारिश पर आधारित है, जो प्रत्यर्थी महानिबंधक, पटना उच्च न्यायालय (प्रशासनिक पक्ष) द्वारा जारी किया गया है।

(ii) याचिकाकर्ता को कथित आक्षेपित अधिसूचना, अर्थात् 9.2.2012 की तिथि से प्रभावी सेवा में रखने एवं व्यवहार करने के वास्ते परमादेश रिट की प्रकृति में एक उचित रिट जारी करना एवं याचिकाकर्ता अपनी सेवा से सेवानिवृत्ति की

तिथि तक सेवा में बना रहेगा, एवं यह सभी परिणामी लाभों के साथ होगा।

3. वर्तमान रिट याचिका को जन्म देने वाले तथ्यों का मैट्रिक्स इस प्रकार हैः

4. याचिकाकर्ता को बिहार न्यायिक सेवा में चुना गया था और 13.07.1988 को न्यायिक दंडाधिकारी के रूप में शामिल किया गया था। बाद में उन्हें 26.02.2006 को अधीनस्थ न्यायाधीश/दीवानी न्यायाधीश वरिष्ठ प्रभाग के रूप में पदोन्नत किया गया और सिवान में तैनात किया गया जहां वे 31.10.2008 तक बने रहे। याचिकाकर्ता के अनुसार, 2007-08 अवधि के लिए गोपनीय टिप्पणियां, जैसा कि उन्हें सूचित किया गया था, इस प्रकार थींः

2007 पहली तिमाही - संतोषजनक

2007 दूसरी तिमाही - सुधार की क्षमता

2008 पहली तिमाही - बहुत अच्छा

2008 दूसरी तिमाही - खराब

2008 तीसरी तिमाही - अच्छा

5. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वर्ष 1991,1998 और 2001 को छोड़कर, उन्हें कभी भी किसी भी प्रतिकूल गोपनीय टिप्पणी के साथ सूचित नहीं किया गया था और इस तरह, स्वाभाविक रूप से वह इसे संतोषजनक माने।

6. इसके अलावा, वर्ष 2006 से 2008 के बीच, जब याचिकाकर्ता को सिवान में अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में तैनात किया गया था; निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा सिवान न्यायाधीश पद का निरीक्षण किया गया था और उन्हें कोई प्रतिकूल गोपनीय टिप्पणी नहीं दी

गई थी। हालाँकि, जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान द्वारा जारी दिनांकित 15.09.2008 के पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता को अवधि 2007-2008 के लिए प्रतिकूल वार्षिक गोपनीय टिप्पणियों के साथ सूचित किया गया था। यह आगे उल्लेख किया गया कि उनके खिलाफ कई शिकायतें और स्थानांतरण याचिकाएं थीं जिनमें "प्रतिष्ठा/अखंडता को छूने" के आरोप थे।

7. इसके बाद याचिकाकर्ता ने जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान को संबोधित दिनांकित 20.09.2008 के पत्र के माध्यम से अपने खिलाफ की गई शिकायतों का विवरण मांगा ताकि वह उच्च न्यायालय के समक्ष निवेदन कर सके। जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान ने बदले में दिनांकित 26.09.2008 के पत्र के माध्यम से उन्हें सूचित किया कि कुल मिलाकर, उनके न्यायालय से मामलों के हस्तांतरण के लिए छह विविध याचिकाएं दायर की गई हैं।

8. 29.9.2008 को याचिकाकर्ता ने वर्ष 2007-2008 के वास्ते उपरोक्त प्रतिकूल टिप्पणियों, जैसा कि विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सीवान, द्वारा दर्ज किया गया था, के खिलाफ पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक के समक्ष प्रतिवेदन को प्राथमिकता दी। इसके बाद, जिला और सत्र न्यायाधीश, सहरसा (जिनके अधिकार क्षेत्र में उन्हें अवर न्यायाधीश -1, सुपाल के रूप में तैनात किया गया था) द्वारा जारी किए गए दिनांकित 12.2.2009 के पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि उच्च न्यायालय ने उन्हें निलंबित कर दिया है। इसके बाद याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय के महानिबंधक को संबोधित दिनांकित 25.3.2009 के पत्र के माध्यम से अपना प्रतिनिधित्व समर्पित किया।

9. आगे के विवाद के अनुसार, ज्ञापन सं. 6123 दिनांक 16/17 अप्रैल 2009 द्वारा पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक ने आरोपों के संबंध में उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही करने के प्रस्ताव को सूचित किया। पत्र में आरोपों के बयान/दस्तावेजों की सूची के

साथ-साथ गवाहों की सूची भी शामिल थी। याचिकाकर्ता को इस संबंध में अपना बचाव का लिखित बयान प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। न्यायाधीश प्रभारी, सिवान को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था जबकि जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान को जांच अधिकारी बनाया गया था। आरोप स्वत्व वाद सं. 47/1996; 153/1989:97/1990; 296/1985; 12/2003 और 114/2008 से संबंधित थे।

10. याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश, सहरसा के माध्यम से कारणों और सामग्रियों के साथ प्रत्येक आरोप से इनकार करते हुए पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक को संबोधित, अपने बचाव का लिखित बयान 5.5.2009 को समर्पित किया।

11. इसके बाद, जांच आगे बढ़ी जिसके दौरान प्रस्तुतकर्ता अधिकारी ने 10 गवाहों के साथ-साथ दस्तावेजों को भी पेश किया। याचिकाकर्ता ने अपने बचाव में 3 गवाह और कुछ दस्तावेज पेश किए। उन्होंने बिहार सरकार कर्मचारी (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 (इसके पश्चात् संक्षेप के वास्ते सी.सी.ए. नियम) के नियम 17(19) के तहत लिखित बयान, प्रत्येक आरोप का निम्नानुसार खंडन करते हुए, भी समर्पित किया।

(ए) आरोप सं.1 के संबंध में कि उप न्यायाधीश VIII, सीवान के रूप में कार्य करते हुए और 1996 के टी. एस. संख्या 47 की सुनवाई करते हुए, वह एक वादी, नानहेजी के संपर्क में आया और आनुतोषिक स्वीकार करने के लिए उसे देवरिया (यू. पी.) में रहने वाले उसके भाई, उमेश पाल का मोबाइल नंबर प्रदान किया। याचिकाकर्ता का मामला यह है/था कि उक्त नानहेजी ने कभी भी किसी भी राशि के साथ देवरिया का दौरा नहीं किया जैसा कि आरोप लगाया गया था और आगे इस बात से इनकार किया कि ऐसी राशि की कोई मांग या भुगतान किया गया था। यह भी बताया गया कि टी. एस. सं.47/96 माननीय निरीक्षण न्यायाधीश की उपस्थिति में बर्खास्त कर दिया गया था;

(बी) जहाँ तक आरोप सं 2, जो यह आरोप लगाता है कि वादी के अधिवक्ता द्वारा किए गए अनुरोध के बावजूद, 1989 की टी. एस. संख्या 153 को स्थगित कर दिया गया था, हालांकि यह तर्क के वास्ते चल रहा था, याचिकाकर्ता का मामला यह है/था कि माननीय न्यायालय के निर्देश के अनुसार, वादी टी. एस. नं. 153/89 को पहले बहस शुरू करनी थी, लेकिन बार-बार निर्देशों के बावजूद, क्योंकि वह ऐसा करने में विफल रहे, अदालत ने अंततः मामले को खारिज कर दिया।

(सी) आरोप सं 3 जो टी. एस. सं. 97/1990 संबंधित है, जहाँ 29.07.2008 को तर्क के लिए निर्धारित आदेश उसी दिन इस तथ्य के बावजूद घोषित किया गया था कि जिला न्यायाधीश, सिवान द्वारा 14.08.2008 को स्थानांतरण याचिका की सुनवाई की जानी थी; याचिकाकर्ता का तर्क यह है/था कि 29.07.2008 को पहले ही एक आदेश पारित किया जा चुका था जिसके बाद याचिका 3:30 अपराह्न पर दायर की गई थी। इसके अलावा, प्रतिवादी अपने आरोप का समर्थन करने के लिए जांच के दौरान उपस्थित नहीं हुआ।

(डी) आरोप सं. 4, टी. एस. सं.296/85 के निपटान में जानबूझकर देरी करने का आरोप था, में तर्क यह था कि चूंकि मामले के संबंध में जिला न्यायाधीश, सिवान के समक्ष स्थानांतरण याचिका लंबित थी, इसलिए यह आगे नहीं बढ़ सकी। इसलिए रिश्वत मांगने/लेने के आरोप को खारिज कर दिया गया।

(ई) जहाँ तक आरोप सं 5 टी. एस. सं. 12/2003 से संबंधित है। जिसमें भी आरोप के अनुसार,निर्णय 13.08.2008 को घोषित किया गया, इस तथ्य के बावजूद कि 12.08.2008 और 13.08.2008 को, इसे तर्क के लिए पोस्ट किया गया था; याचिकाकर्ता का मामला यह है/था कि निर्णय 13.08.2008 यानी उसके लिए निर्धारित दिन पर दिया गया था जैसा कि आदेश पत्र और अदालत की डायरी में दिखाया गया है। हालांकि, कारण सूची में, बेंच क्लर्क ने इसे "निर्णय" शीर्षक के तहत रखने के बजाय "तर्क" शीर्षक के तहत शामिल

करने की गलती की। इस छोटी और प्रामाणिक गलती का पता काम की जल्दबाजी में नहीं लगाया जा सका, जिसके लिए किसी भी उद्देश्य को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

(एफ) अंतिम आरोप के संबंध में (आरोप सं6) टी. एस. सं. 114/2008 में प्रतिस्थापन याचिका की अनुमति देने से संबंधित। जिसके लिए कथित रूप से धन की मांग की गई थी, वह भी झूठा और तुच्छ साबित हुआ है क्योंकि अभियोजन पक्ष के गवाह, ई. डब्ल्यू. 7 ने स्वीकार किया कि उन्हें याद नहीं था कि वह याचिकाकर्ता के कक्ष में गए थे या कोई राशि का भुगतान किया था।

12. कार्यवाही के समापन के बाद, पूछताछ अधिकारी ने उच्च न्यायालय के महानिबंधक को अपनी रिपोर्ट दिनांक 16.05.2011 को समर्पित को, जिसमें उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आरोप सं. 3, 4 और 5 साबित हुए हैं जबकि आरोप संख्या 1, 2 और 6 को स्थापित नहीं किया जा सका।

13. इसके बाद याचिकाकर्ता को दिनांकित 14.07.2011 के पत्र के माध्यम से दिनांकित 16.05.2011 के पूछताछ रिपोर्ट के खिलाफ अपना कारण बताने के लिए कहा गया, जिसे उन्होंने 23.07.2011 को समर्पित किया, जिसमें कहा गया है कि उक्त आरोप 3,4 और 5 भी स्थापित नहीं किए जा सके क्योंकि निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं।

14. प्रस्तुत कारण दिखाएँ के अनुसारः

(i) आरोप सं.3 पर निष्कर्ष अभि.साक्षी 9, प्रमोद कुमार कनौजिया के साक्ष्य पर आधारित है। वापस बुलाए जाने के बाद दर्ज किया गया है और आदेश पत्र और अदालत की डायरी की अनदेखी करते हुए कारण सूची को अनुचित महत्व दिया गया है। आदेश पक्षों की उपस्थिति में और उन्हें सुनने के बाद पारित किया गया था। इसके अलावा, स्थानांतरण

याचिका दोपहर के भोजन से पहले के सत्र में निर्णय देने के बाद दिन के अंत में दायर की गई थी।

(ii) आरोप सं.4 पर निष्कर्ष सबूतों की कमी से भी पीड़ित है क्योंकि ई. डब्ल्यू. 10, रामश्रय यति, आरोप के निर्माता ने कहा कि उन्होंने अपनी याचिका में आरोप नहीं लगाया और न ही उन्हें कोई नुकसान हुआ;

(iii) आरोप सं. 5, याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि निष्कर्ष साक्ष्य में विरोधाभासी बयानों पर आधारित हैं। मामले के अभिलेख से पता चलता है कि वादी के अधिवक्ता को लगभग दस बार सुना गया था और फिर भी उनके केवल इस आरोप पर कि उन्हें ठीक से नहीं सुना गया था, पूछताछ अधिकारी ने इसे अनुचित महत्व दिया जब जिस पक्ष के लिए विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हो रहे थे, ने योग्यता के आधार पर इसे खो दिया था। बेंच क्लर्क ई. डब्ल्यू. 9, प्रमोद कुमार कनौजिया ने स्वीकार किया कि अदालत की डायरी दिनांक 13.08.2008 में उन्होंने निर्णय के वास्ते शीर्षक के तहत टी.एस.सं.12/2003 दर्ज किया था, लेकिन दिनांकित 13.08.2008 के कारण सूची में, अनजाने में, निर्णय के लिए कोई शीर्षक नहीं बनाया गया था और उक्त वाद को तर्क के लिए शीर्षक के तहत दिखाया गया था। बेंच क्लर्क के इस स्वीकार ने इस प्रकार स्पष्ट रूप से आरोप को खारिज कर दिया।

15. इसके बाद, ज्ञापन सं. 15080, 15.09.2011 पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा जारी, याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि निलंबन का आदेश दिनांक 12.02.2009 तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिया गया है, लेकिन वह निलंबन की अवधि के लिए निर्वाह भत्ते के अलावा कोई भी सेवा/मौद्रिक लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा। याचिकाकर्ता को उस पद में शामिल होने के लिए दिनांकित 16.09.2011 के पत्र के माध्यम

से सूचित किया गया था, जिसके बाद उन्होंने अवर न्यायाधीश III, सुपाल के रूप में अपना कर्तव्य फिर से शुरू किया।

16. इसके बाद, ज्ञापन सं. 15491 दिनांकित 19.09.2011 उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा जारी, याचिकाकर्ता को जिला न्यायाधीश, सहारसा के माध्यम से सूचित किया गया था कि न्यायालय को *"स्थायी प्रभाव से एक चरण तक वेतन में कमी उसके विरुद्ध प्रमाणित"* आरोपों के वास्ते उसे दंड देना पसंद है। याचिकाकर्ता को जिला और सत्र न्यायाधीश, सहरसा के दिनांकित 28.9.2011 को तामील किया गया जिसमें पत्र/आदेश उन्हें सूचित किया गया है कि उच्च न्यायालय के पत्र के संदर्भ में, उन्हें सभी न्यायिक कार्यों से तुरंत मुक्त कर दिया गया है।

17. इसके बाद 2012 की सी. डब्ल्यू. जे. सी. संख्या 3614 के माध्यम से उच्च न्यायालय द्वारा जारी किया गया ज्ञापन संख्या 15491 दिनांक 19.09.2011 को चुनौती देने वाली पहली रिट याचिका दायर की गई।

18. इसके पश्चात् याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संयुक्त सचिव, बिहार सरकार के हस्ताक्षर के तहत जारी दिनांकित 8.2.2012 की अधिसूचना की फैक्स प्रति तामीला की गई, उन्हें यह सूचित करते हुए कि 1952 की बिहार सेवा संहिता(इसके पश्चात् संक्षेप के वास्ते सेवा संहिता) का नियम 74(बी)(ii) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उन्हें अधिसूचना के तारीख के प्रभाव से तीन माह की पूर्व सूचना के बदले में तीन माह का वेतन एवं भत्ता के साथ अनिवार्य रुप से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया है। अधिसूचना में आगे बताया गया कि यह आदेश पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा दिनांकित 18.11.2011 को जारी पत्र के माध्यम से की गई सिफारिश के बाद पारित किया गया है। याचिकाकर्ता के अनुसार, उसे तीन महीने का वेतन नहीं दिया गया था।

19. उक्त विवादित अधिसूचना दिनांक 9.2.2012 के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने 2013 की रिट याचिका (दीवानी) नं.48 भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर की जिसकी सुनवाई हुई और उन्हें एक उचित आवेदन करके राहत के लिए उपयुक्त मंच से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका वापस लेने की अनुमति दी गई।

20. इसके बाद, 2013 की सी. डब्ल्यू. जे. सी. संख्या 11139 के माध्यम से दूसरी रिट याचिका को अधिसूचना को चुनौती देने के लिए प्राथमिकता दी गई।

21. 2012 के सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 3614 में उपस्थित विद्वान वकील श्री मुकुल सिन्हा प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता को उन आरोपों पर दंडित किया गया है जो निश्चित रूप से साबित नहीं हुए थे। वह प्रस्तुत करता है कि 6 आरोपों में से, पूछताछ अधिकारी स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आरोप सं.1,2 और 6 को साबित नहीं किया जा सका। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आरोप सं.3 (टी.एस.सं.97(1990) से संबंधित अभिलेख पत्रक का अवलोकन। और आरोप संख्या 5 (टी. एस. 12/2003) यह दिखाएगा कि वे निर्णय के लिए तय किए गए थे और बेंच क्लर्क की ओर से *प्रामाणिक* गलतियाँ थीं/थीं, यह दर्ज करते हुए कि मामले तर्क के लिए पोस्ट किए गए थे। आगे निवेदन यह है कि जहाँ तक 1985 के टी. एस. संख्या 296 के निपटारे में जानबूझकर देरी से संबंधित आरोप संख्या 4 का संबंध है, उसे अपने तार्किक निष्कर्ष पर नहीं ले जाया जा सका क्योंकि स्थानांतरण याचिका जिला न्यायाधीश, सिवान के समक्ष लंबित थी। विद्वान वकील प्रस्तुत करता है कि उसे दंडित करने के एकमात्र उद्देश्य के साथ, मनगढ़ंत आरोपों पर, दंड आदेश ज्ञापन संख्या 19.09.2011 का 15491 के माध्यम से पारित किया गया था। जो अलग रखे जाने के लिए उपयुक्त है।

22. 2013 के सी. डब्ल्यू. जे. सी. संख्या 11139 में याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री राजेंद्र नारायण प्रस्तुत करते हैं कि जिन

विवादित आदेशों द्वारा उन्हें अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त किया गया है, वे गुप्त और गैर-भाषी हैं। यह स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही पर आधारित है जिसके अनुसार उसे पहले ही दंडित किया जा चुका है। इस प्रकार, उसे दूसरी बार दंडित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह दोहरी खतरे के बराबर होगा। याचिकाकर्ता को केवल अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के लिए (डेड वूड)मृत लकड़ी नहीं कहा जा सकता है।

23. विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि याचिकाकर्ता को कभी भी उस सिफारिश की प्रति नहीं दी गई जो विवादित आदेश के पारित होने का आधार बनी। उन्हें पहले 19.09.2011 के एक आदेश के माध्यम से दंडित किया गया था और निलंबन आदेश को रद्द करने के बाद उन्हें शामिल होने की अनुमति दी गई थी और तदनुसार वे अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे थे। उनके खिलाफ किसी भी रूप में कोई शिकायत नहीं थी। उस पृष्ठभूमि में, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को पारित करने का बिल्कुल कोई अवसर नहीं था क्योंकि कोई सार्वजनिक हित भी नहीं दिखाया गया था।

24. विद्वान वरिष्ठ वकील प्रस्तुत करते हैं कि एक बार जब याचिकाकर्ता को कार्यवाही के बाद दंडित किया गया था; जब वह एक साल के भीतर सेवानिवृत्त होने जा रहा था तो उसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना एक कठोर सजा है और इसे दरकिनार करना उपयुक्त होगा।

25. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री राजेन्द्र नारायण और विद्वान अधिवक्ता श्री मुकुल सिन्हा ने अपने मामलों के पक्ष में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित मामलों का हवाला दिया।

26. विद्वान वकील प्रस्तुत करता है कि **नंद कुमार वर्मा बनाम झारखंड राज्य और अन्य 2012 (4) पी. एल. जे. आर. 126 (एस. सी.)** में प्रतिवेदित के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 27 में अभिनिर्धारित किया कि जब स्थायी समिति ने

स्पष्टीकरण स्वीकार कर लिया था और कार्यवाहियों को हटा दिया था, तो दूसरी जांच करने का कोई औचित्य नहीं था। पैरा 27 इस प्रकार हैः

> *"27. उसके स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के बाद, उच्च न्यायालय का अभी भी यह विचार था कि अपीलार्थी के खिलाफ उसकी कथित चूक एवं कमीशन और जघन्य अपराधों में भी अंधाधुंध जमानत देने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता है। अभियोग ज्ञापन का उत्तर अपीलार्थी द्वारा दिया गया था और इसमें उन्होंने विशेष रूप से तर्क दिया था कि उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने स्पष्टीकरण स्वीकार करने के बाद उन्हें सूचित किया था कि उनका स्पष्टीकरण स्वीकार कर लिया गया है और उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोप बंद हो गए हैं। यद्यपि जाँच अधिकारी द्वारा मामले के इस पहलू पर ध्यान दिया जाता है, लेकिन वह कोई निष्कर्ष नहीं निकालता है। हालाँकि, उन्होंने देखा है कि अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हो गए हैं। इसके आधार पर, उच्च न्यायालय ने प्रत्यावर्तन का आदेश पारित किया है जिसके तहत अपीलार्थी को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुन्सिफ के पद पर वापस भेज दिया गया था और इसे राज्य सरकार द्वारा भी अधिसूचित किया गया था। हमारी राय में, स्पष्टीकरणों को स्वीकार करने और अपीलार्थी को यह सूचित करने के बाद, उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाही शुरू करने और अपीलार्थी को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद से मुन्सिफ के पद पर वापस करने का आदेश पारित करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता था। सामान्य सिद्धांतों पर, किसी विशेष कदाचार के आरोप के संबंध में केवल एक ही जांच हो सकती है और*

नियम आमतौर पर यही प्रदान करते हैं। यदि, किसी तकनीकी या अन्य अच्छे आधार, प्रक्रियात्मक या अन्यथा के लिए, पहली जांच या सजा या दोषमुक्ति कानून में गलत पाई जाती है, तो ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है कि दूसरी जांच शुरू नहीं की जा सकती है। इसलिए, जब एक पूर्ण जांच कार्यवाही को एक सक्षम मंच द्वारा तकनीकी या प्रक्रियात्मक दुर्बलता के आधार पर अलग कर दिया जाता है, तो उन्हीं आरोपों पर नई कार्यवाही की अनुमति है। वर्तमान मामले में, एक आरोप ज्ञापन जारी किया गया था और अपीलार्थी को दिया गया था। आरोप पत्र के पढ़ने में स्थायी समिति की कार्यवाही का कोई संदर्भ नहीं होता है। यह भी नहीं पाया गया है कि क्या पूर्ववर्ती कार्यवाहियों को निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पुनर्जीवित किया गया है। वास्तव में, आरोप पत्र की प्राप्ति के बाद, अपीलार्थी ने अपने उत्तर बयान में, जांच अधिकारी के ध्यान में लाया था कि आरोपों के उसी सेट पर, पहले एक नोटिस जारी किया गया था और उनका स्पष्टीकरण दिनांकित 21.12.1994 प्राप्त होने के बाद, स्थायी समिति ने उनके स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के बाद पूरी कार्यवाही को हटा दिया था और उच्च न्यायालय के महानिबंधक के दिनांकित 02.02.1995 के पत्र द्वारा उन्हें सूचित किया गया था। दाखिल जवाब बयान में अपने स्पष्टीकरण के बावजूद, जांच अधिकारी ने जांच की कार्यवाही शुरू कर दी है और उसी के पूरा होने के बाद, अपनी रिपोर्ट समर्पित कर दी है जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए, इन परिस्थितियों में, उन आरोपों पर दूसरी जांच करने का कोई औचित्य नहीं है, जिन्हें पहले ही हटा दिया गया है। यहां तक कि दोहरे

खतरे के सिद्धांतों के लागू नहीं होने के बावजूद, कानून केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही की अनुमति देता है और उत्पीड़न का नहीं। इस तरह की प्रथा की अनुमति देना लोक सेवा के हित में नहीं है। इस परिस्थिति में, हम अपीलार्थी को निचले पद पर वापस करने के विवादित आदेश को कायम नहीं रख सकते।"

27. इसके अलावा पैरा **30** में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किः

"30. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि सेवा से समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की बहुत सीमित गुंजाइश है। जैसा कि इस न्यायालय ने राजिया के मामले (ऊपर) में कहा कि जब उच्च न्यायालय का विचार है कि न्यायिक सेवा के किसी सदस्य के खिलाफ अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दिया जाना चाहिए, तो ऐसी सामग्री की उपयुक्ता या पर्याप्तता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है, जब तक कि सामग्री अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य के लिए बिल्कुल अप्रासंगिक न हो। हम यह भी जोड़ते हैं कि जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को अदालत में चुनौती दी जाती है, तो अदालत को यह जांचने का अधिकार है कि क्या इस मुद्दे के लिए कुछ आधार या संगत सामग्री मौजूद है या नहीं। हालाँकि, न्यायालय को उस सामग्री की पर्याप्तता में कोई दिलचस्पी नहीं है जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश निहित है। "

28. न्यायालय ने पैरा **33** में भी इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

"33. इसके अलावा, जिला और सत्र न्यायाधीश के पास अपीलार्थी के कामकाज को निकट क्वार्टर से देखने का अवसर है।

जिन्होंने वर्ष 1997-98 और 1998-99 के लिए अपीलार्थी के हाल के ए. सी. आर. में अपीलार्थी के समग्र कार्य के बारे में उसके निपटान को छोड़कर अनुकूल रूप से रिपोर्ट किया है। इसे ध्यान में रखते हुए, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से संबंधित न्यायिक अधिकारी के कामकाज के बारे में निकटतम वरिष्ठ अधिकारी द्वारा दी गई राय या टिप्पणियों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। निकटतम वरिष्ठ को अवलोकन करने, विश्लेषण करने, बारीकी से जांच करने और फिर अपने काम, समग्र दक्षता और प्रतिष्ठा पर टिप्पणी करने के लिए बेहतर स्थिति में रखा जाता है। ***नवल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,*** *(2003) 8 एस. सी. सी. 117 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की हैः*

> *12. ..... वर्तमान प्रणाली में, उच्च अधिकारी की राय पर निर्भरता रखने की आवश्यकता है, जिसे संबंधित अधिकारी के कार्य को करीब से देखने का अवसर मिला था और संबंधित अधिकारी द्वारा प्राप्त समग्र प्रतिष्ठा के संबंध में अपनी राय का निर्माण आधार होगा।"*

29. इस तर्क पर कि शुरुआत में जो आदेशित किया गया था। बाद में अतिरिक्त आधारों द्वारा मान्य नहीं किया जा सकता है, विद्वान वरिष्ठ वकील ने **मोहिंदर सिंह गिल और एक अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य ने ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 851** में प्रतिवेदित गया मामले पर भरोसा किया एवं कंडिका 8 निम्न प्रकार पठित हैः

"8. दूसरा समान रूप से प्रासंगिक मामला यह है कि जब कोई सांविधिक पदाधिकारी कुछ आधारों के आधार पर आदेश देता है, तो इसकी वैधता को इस प्रकार उल्लिखित कारणों से आंका जाना चाहिए और शपथ पत्र के रूप में या अन्यथा नए कारणों से पूरक नहीं किया जा सकता है। अन्यथा, शुरुआत में खराब आदेश, जब तक वह किसी चुनौती के कारण अदालत में आता है, तब तक बाद में लाए गए अतिरिक्त आधारों द्वारा मान्य हो सकता है। हम यहाँ गोरधनदास भंजी (ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 16) (पृष्ठ 18 पर) में जे. बोस की टिप्पणियों की ओर ध्यान आकर्षित कर सकते हैंः

"सार्वजनिक रूप से किए गए सार्वजनिक आदेश, एक वैधानिक प्राधिकरण के प्रयोग में, अधिकारी द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरणों के प्रकाश में नहीं माने जा सकते हैं जो आदेश देते हैं कि उनका क्या मतलब था, या उनके दिमाग में क्या था, या उनका क्या करने का इरादा था। सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा दिए गए सार्वजनिक आदेश सार्वजनिक प्रभाव के लिए होते हैं और जिनको संबोधित किया जाता है, उनके कार्य और आचरण को प्रभावित करने का इरादा होता है और उसे यथार्थ में आदेश ही में उपयोग किए गए भाषा में संदर्भ में समझा जाना चाहिए।

ऑर्डर पुरानी शराब की तरह नहीं हैं जो उम्र बढ़ने के साथ बेहतर होती जा रही हैं।

एक चेतावनी।"

30. जनहित की अनुपस्थिति के बिंदु पर उत्तरदाताओं को आदेश पारित करने की आवश्यकता होती है, विद्वान वकील **एच. सी. गार्गी बनाम हरियाणा राज्य** के मामले में रिपोर्ट किया गया, **ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 65** पर भरोसा किया जो पैरा 2 के विशिष्ट संदर्भ के साथ जो निम्नानुसार हैः

> *2. इस मामले में, अपीलार्थी जो 35 वर्षों की सेवा के बाद हरियाणा के सहायक उत्पाद शुल्क और कराधान अधिकारी थे, उन्हें हरियाणा राज्य सरकार द्वारा 1 फरवरी, 1985 के विवादित आदेश द्वारा सार्वजनिक हित में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया है, जिसका उद्देश्य पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड 1, भाग I के नियम 3-25(डी) के आर. 3-25 (डी) के तहत कार्य करना है। सेवा के अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि 1979 में समीक्षा समिति की रिपोर्ट के आधार पर, अपीलार्थी को 50 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद सेवा में बनाए रखा गया था और उसके बाद 1983 में दूसरी समीक्षा समिति की रिपोर्ट पर, उन्हें 55 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर, उनकी सेवा के रिकॉर्ड के आधार पर सेवा में जारी रखा गया था, जो वर्ष 1964-65 से वर्ष 1981-82 तक समान रूप से अच्छा था। जब वह सेवानिवृत्ति के कगार पर था, राज्य सरकार ने तत्कालीन आबकारी और कराधान आयुक्त द्वारा की गई दो प्रतिकूल प्रविष्टियों के आधार पर नियमों के नियम 3-25 (डी) के तहत उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्देश दिया, हालांकि अपीलकर्ता ने दलील दी कि उन्होंने उप आबकारी और कराधान आयुक्त से एक अच्छी रिपोर्ट अर्जित की, जिन्हें प्रश्नगत वर्षों के दौरान उनका प्रदर्शन देखने का अवसर मिला, राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिटर्न में रिट*

याचिका को इस आधार पर चुनौती दी कि अपीलकर्ता नियमों के नियम 3.25 (डी) के तहत सेवानिवृत्त हुआ था क्योंकि आयुक्त द्वारा की गई प्रतिकूल प्रविष्टियों से पता चलता है कि उसकी ईमानदारी संदिग्ध थी। हालाँकि यह आयुक्त द्वारा की गई दो प्रतिकूल प्रविष्टियों से साबित नहीं होता है जो दर्शाता है कि वर्ष 1982-83 में उनका प्रदर्शन 'औसत' था और वर्ष 1983-84 में 'औसत से कम' था जो उनकी ईमानदारी से संबंधित नहीं था। अपीलार्थी ने आरोप लगाया कि उसने कुछ कारणों से आयुक्त की नाराजगी झेली थी। जबकि आयुक्त द्वारा की गई प्रतिकूल प्रविष्टियों के खिलाफ उनका प्रतिनिधित्व विचाराधीन था, सरकार ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति का विवादित आदेश पारित किया और उसके बाद प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया। नियमों के नियम 3.25 (डी) के तहत अनिवार्य सेवानिवृत्ति की शक्ति नियम में उल्लिखित शर्त के अधीन प्रयोग किया जाएगा, जिसमें से एक यह है कि संबंधित प्राधिकारी की राय होनी चाहिए कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में है। भारत संघ बनाम जे. एन. सिन्हा, (1971) 1 एस. सी. आर. 791 (ए. आई. आर 1971 एस. सी. 40) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित जनहित में ऐसे मामलों में परीक्षणः। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ऐसी कोई सामग्री थी जिसके आधार पर राज्य सरकार यह राय बना सकती थी कि अपीलार्थी को 57 वर्ष की आयु में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना जनहित में था। वास्तव में जनहित में उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का कोई औचित्य नहीं था। इसलिए नियमों के नियम 3.25(डी) अपीलार्थी आदेश की अनिवार्य सेवानिवृत्ति

के विवादित आदेश को मनमाना होने के रूप में निरस्त किया जाना चाहिए।

31. प्रत्यर्थी-उच्च न्यायालय का प्रतिनिधित्व श्री सत्यबीर भारती द्वारा किया जाता है। एक जवाबी हलफनामा भी रिकॉर्ड में है।

32. उच्च न्यायालय के रुख के अनुसार, याचिकाकर्ता को अवर न्यायाधीश -1 सुपौल के रूप में तैनात करते हुए, सहरसा के न्यायाधीश के तहत में मेमो नं. 2467 दिनांक 12.02.2009 द्वारा जो प्रत्यर्थी सं.2 जारी किया गया था निलंबत पर रखा गया। याचिकाकर्ता के खिलाफ सभी आरोप उस अवधि से संबंधित थे जब वह मई 2006 एवं 31 अक्टूबर, 2008 के मध्य अवर न्यायाधीश -VIII, सीवान के रुप में तैनात था।

33. श्री भारती का तर्क है कि बाद में, पटना उच्च न्यायालय द्वारा जारी दिनांकित 16/17.4.2009 के एक आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता को आरोप पत्र, दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची वाला ज्ञापन भी दिया गया था। प्रभारी न्यायाधीश, सिवान को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था जबकि जिला न्यायाधीश, सिवान को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था।

34. वह समर्पित करता है कि आरोपों के अनुच्छेद के एक सादा अवलोकन से पता चलेगा कि उस पर छह मामलों में आरोप लगाया गया था। एक विस्तृत जाँच करने के बाद, जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान ने 16 मई, 2011 को अपनी जाँच रिपोर्ट समर्पित की, जिसके द्वारा उनके खिलाफ बनाए गए छह आरोपों में से तीन उनके खिलाफ साबित हुए, जबकि बाकी तीन आरोप साबित नहीं हुए।

35. विद्वान वकील समर्पित करते हैं कि जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, पटना उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने रिट याचिकाकर्ता को कारण बताने के लिए नोटिस

जारी किया कि पूछताछ अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपराध के निष्कर्ष को क्यों स्वीकार नहीं किया जाए और उसके खिलाफ साबित हुए अपराध/कदाचार के लिए उपयुक्त सजा के साथ उससे मुलाकात क्यों नहीं की जाए। इसके बाद 14 जुलाई, 2011 को याचिकाकर्ता को पत्र लिखा गया।

36. याचिकाकर्ता ने अपना कारण बताओ समर्पित किया जिस पर विचार किया गया और स्थायी समिति ने अपनी दिनांकित 07.09.2011 के बैठक के माध्यम से निर्णय लिया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ साबित हुए आरोपों के लिए, उसे स्थायी प्रभाव से एक चरण तक वेतन में कमी। के दंड के साथ मिला जाए। निलंबन की अवधि को निरस्त कर दिया गया और आगे यह संकल्प लिया गया कि निलंबन की अवधि के लिए, वह निर्वाह भत्ते के अलावा कोई भी सेवा लाभ/मौद्रिक लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा।

37. स्थायी समिति ने याचिकाकर्ता के पूरे सेवा रिकॉर्ड पर विचार करने के लिए कहा कि क्या उसे 'सेवा संहिता' के नियम 74 (बी) (ii) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए जनहित में सेवा से सेवानिवृत्त होने की आवश्यकता है।

38. उच्च न्यायालय के विद्वान वकील सीधे इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के सेवा कैरियर से संबंधित चार्ट पर ले गए जो इस प्रकार हैः-

जन्म तिथि	1.1.1954
सेवानिवृत्ति की तिथि	31.12.2013
गृह जिला	देवरिया (यू. पी.)
मुन्सिफ के रूप में न्यायिक सेवा में शामिल हुए	13.07.1988
मुन्सिफ के पद पर पुष्टि की	27.06.1991

गई	
अवर न्यायाधीश के पद पर पदोन्नत हुए	24.02.2006

जिला न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई टिप्पणीः

1990-91	औसत योग्यता वाला अधिकारी।
1991-92	झगड़ालू। बार के सदस्यों और वादी जनता के सदस्यों के बीच अच्छी प्रतिष्ठा नहीं रखता है। XXX-16-93 के माध्यम से काट दिया गया।
1994-95	औसत योग्यता वाला अधिकारी। कुल मिलाकर उनका प्रदर्शन उचित रहा है।
1996-97	औसत योग्यता और प्रतिष्ठा वाला अधिकारी। उसे अपने आउट-टर्न में सुधार करना चाहिए।
1997-98	उन्हें अपनी चौथी श्रेणी के कर्मचारियों को नियंत्रित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।
1998-99	उसे अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिए और बार के सदस्यों और उसके साथ काम करने वाले कर्मचारियों के साथ अपने व्यवहार में सुधार करने का प्रयास करना चाहिए। (-) फाइल नं. XXV-85-1998 के माध्यम से काट दिया गया।
2000-01	औसत योग्यता वाला अधिकारी।
2001-02	औसत अधिकारी। ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के संबंध में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा नहीं थी। उसे ऐसी अवधि के लिए निगरानी में रखा जा सकता है

	जो माननीय न्यायालय को उचित लगे।
2002-03	औसत प्रदर्शन वाला अधिकारी।
2003-04	अच्छे अधिकारी हैं।
2004-05	औसत योग्यता वाला अधिकारी।
2005-06	औसत योग्यता वाला अधिकारी।
2006-07	औसत अधिकारी।
2007-08	औसत-अखंडता संदिग्ध।
2008-09	उन्होंने 06.11.2008 को ज्वाइन किया है। इसलिए उनकी रिपोर्ट समर्पित नहीं की जा रही है।

<u>माननीय निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई टिप्पणियांः</u>

सितंबर, 1993	संतोषजनक।
मई,2003	सी, वह कुल मिलाकर औसत से कम न्यायिक अधिकारी हैं। काफी सुधार की जरूरत है।
जून,2005	बी +

39. विद्वान वकील समर्पित करते हैं कि चार्ट से यह देखा जा सकता है कि प्रतिकूल गोपनीय टिप्पणी वर्ष 1991-92,1997-98,1998-99,2000-01,2001-02,2003 और 2007-08 के लिए दर्ज की गई थी और उन्हें वर्ष 2003-04 को छोड़कर शेष वर्षों के लिए औसत योग्यता का अधिकारी माना गया था। वर्ष 2008-09 में अवर न्यायाधीश -VIII,

सिवान के रूप में तैनात रहते हुए उनके खिलाफ साबित हुए विभिन्न आरोपों के कारण उन्हें स्थायी समिति के निर्णय दिनांक 07.09.2011 द्वारा एक बड़ी सजा भी दी गई थी।

40. प्रत्यर्थियों ने जिला और सत्र न्यायाधीश द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ 1998-99,2000-01 और 2007-08 अवधि के लिए दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों और वर्ष 2003 में माननीय निरीक्षण न्यायाधीश की टिप्पणियों को भी रिकॉर्ड में लाया हैः

जिला और सत्र न्यायाधीश, सहरसा द्वारा वर्ष 1998-99 के लिए दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों वाली गोपनीय रिपोर्ट का कॉलम इस प्रकार हैः

4	क्या वह एक कुशल अधिकारी है?	:	उसे सुधार की जरूरत है।
5	क्या रिपोर्ट की अवधि के दौरान उन्होंने ईमानदारी और निष्पक्षता के लिए प्रतिष्ठा बनाए रखी है?	:	कुछ वरिष्ठ वकीलों ने उनकी ईमानदारी और प्रतिष्ठा के बारे में शिकायत की। कुछ कुछ मामलों के संबंध में बार-बार स्थानांतरण याचिकाएं भी दायर की गईं।
6	क्या वह किसी भी बढ़ी हुई शक्ति के प्रयोग के लिए उपयुक्त है? यदि हाँ, तो कौन सा?	:	नहीं। उनके प्रदर्शन को एक साल तक देखा जाना चाहिए ताकि उन्हें कोई भी बढ़ी हुई शक्ति सौंपने पर विचार किया जा सके।
7	यदि कोई दोष हो।	:	बार के सदस्यों के साथ उनके अच्छे संबंध नहीं हैं। अदालत की कार्यवाही पर उसका नियंत्रण होना चाहिए ताकि कोई शिकायत न कर सके।
8	अंतिम मूल्यांकन	:	जब भी मैंने उनकी प्रतिष्ठा के बारे में उनके खिलाफ कोई शिकायत सुनी, तो मैंने हमेशा उन्हें इस सर्वोच्च संस्थान 'न्यायपालिका' के सभी मानदंडों को बनाए रखते हुए काम करने के अपने तरीके को

			सुधारने का सुझाव दिया। यहां तक कि उनकी पिछली टिप्पणियां भी निराशाजनक हैं।

वर्ष 2000-01 के लिए जिला और सत्र न्यायाधीश, पटना द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों वाली गोपनीय रिपोर्ट का कॉलम इस प्रकार हैः

2	क्या वह मामलों के निपटारे में मेहनती और त्वरित है?	:	औसतन, उसे अपने आउट-टर्न में सुधार करने के लिए अधिक प्रयास करना चाहिए।
4	क्या वह एक कुशल अधिकारी है?	:	वह कॉलम नंबर 5 पर टिप्पणियों के कारण दक्षता की छाप नहीं डाल पाए हैं।
5	क्या उन्होंने रिपोर्ट के तहत अवधि के दौरान ईमानदारी एवं निष्पक्षता के वास्ते प्रतिष्ठता बनाए रखी है।	:	ईमानदारी एवं निष्पक्षता के वास्ते उनकी प्रतिष्ठा के खिलाफ शिकायतें और गोपनीय जांच पर, यह पता चला है कि शिकायतों में सार है।
	क्या वह किसी भी बढ़ी हुई शक्ति के प्रयोग के लिए उपयुक्त है? यदि हाँ, तो कौन सा?		अब नहीं, कॉलम सं.-5 को देखते हुए, उन्हें ऐसी अवधि के लिए निगरानी में रखा जाना चाहिए जो माननीय न्यायालय को उचित और उपयुक्त लगे।
7	यदि कोई दोष हो।	:	कॉलम संख्या 4,5 और 6 के समान।
8	अंतिम मूल्यांकन	:	औसत अधिकारी। ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के संबंध में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा नहीं थी। उसे ऐसी अवधि के लिए निगरानी में रखा जा सकता है जो माननीय न्यायालय को उपयुक्त एवं

			उचित लगे।

वर्ष 2003 में मुंगेर न्यायाधीश के माननीय निरीक्षण न्यायाधीश द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों वाली गोपनीय रिपोर्ट का कॉलम इस प्रकार हैः

3	क्या उसके निर्णय और आदेश लिखित और स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए हैं? (वह श्रेणी जिसमें निर्णय को रखा जाना है, अर्थात् ए प्लस उत्कृष्ट, ए-बहुत अच्छा बी-प्लस (अच्छा), बी-औसत/संतोषजनक, सी-औसत से नीचे)।	:	बी. वह औसत निर्णय लिखते हैं।
5	क्या वह एक कुशल न्यायिक अधिकारी है?	:	नहीं।
6	क्या उन्होंने ईमानदारी और निष्पक्षता के लिए प्रतिष्ठा बनाए रखी है?	:	उन्हें अपनी छवि सुधारनी चाहिए।
7	अपने वरिष्ठों अधीनस्थ एवं सहकर्मियों के बारे में उनका विचार।	:	अच्छा नहीं है। काफी मनमौजी।
8	बार के सदस्यों और जनता के प्रति व्यवहार।	:	अच्छा नहीं है। काफी स्वभावपूर्ण।
9	शुद्ध परिणाम।	:	सी. वह कुल मिलाकर औसत से कम न्यायिक अधिकारी हैं। काफी सुधार की जरूरत है।

वर्ष 2007-2008 के लिए जिला और सत्र न्यायाधीश, सिवान द्वारा दर्ज की गई प्रतिकूल टिप्पणियों वाली गोपनीय रिपोर्ट का कॉलम इस प्रकार हैः

5	क्या उन्होंने रिपोर्ट की अवधि के दौरान ईमानदारी और निष्पक्षता के लिए प्रतिष्ठा बनाए रखी है।	:	नहीं, अखंडता की प्रतिष्ठा को छूने वाले आरोपों के साथ कई शिकायतें और स्थानांतरण याचिकाएं संदिग्ध हैं।
7	यदि कोई दोष हो	:	ईमानदारी संदिग्ध है।

41. यह पटना उच्च न्यायालय के विद्वान वकील का निवेदन है कि याचिकाकर्ता के पूरे सेवा रिकॉर्ड पर विचार करने के बाद, स्थायी समिति ने अपनी दिनांक 27.09.2011 की बैठक में उनकी सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने का संकल्प लिया और उक्त प्रस्ताव की पुष्टि प्रचलन के माध्यम से प्राप्त पूर्ण न्यायालय के प्रस्ताव द्वारा की गई। इसके बाद इसे आवश्यक आदेश/अधिसूचना जारी करने के लिए राज्य सरकार को भेजा गया, आगे आवश्यक अधिसूचना संख्या 7/स्था-1-05/2011 सा 2243 दिनांकित 09.02.2012 द्वारा जारी की जाती है।

42. विद्वान वकील श्री भारती ने उद्धृत किया है कि ***राम मूर्ति यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य (2020)1 एस सी सी 801*** में प्रतिवेदित का मामलों के समर्थन में है कि कर्मचारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर आदेश या अनिवार्य सेवानिवृत्ति की न्यायिक समीक्षा की गुंजाइश तब तक बेहद सीमित है जब तक कि यह मनमाना या मनमौजी, दुर्भावनापूर्ण, प्रासंगिक सामग्री की अनदेखी या उपेक्षा आदि नहीं पाई जाती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलीय प्राधिकरण के समान निर्णय में नहीं बैठ सकता है। विद्वान वकील ने पैराग्राफ 14 और 15 का उल्लेख किया जो इस प्रकार हैः

14. *न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति की पदोन्नति सहित करियर की आकांक्षाएं होती हैं। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश निस्संदेह कैरियर की आकांक्षाओं को प्रभावित करता है। ऐसा कहने के बाद, हमें यह भी सावधानी बरतनी चाहिए कि न्यायिक सेवा किसी अन्य सेवा की तरह नहीं है। न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने वाला व्यक्ति अपने प्रभुसता-सम्पन्न कार्यों के निर्वहन में राज्य की ओर से कार्य करता है। न्याय का वितरण न केवल एक भारी कर्तव्य है, बल्कि इसे एक पवित्र कर्तव्य के निर्वहन के समान माना गया है, और इसलिए यह एक बहुत ही गंभीर मामला है। ईमानदारी, आचरण, सत्यनिष्ठा के मानक जो किसी अन्य नौकरी में एक स्वार्थजीवी द्वारा कर्तव्यों के निर्वहन के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं, एक न्यायिक अधिकारी के लिए समान नहीं हो सकते हैं। एक न्यायाधीश सार्वजनिक विश्वास त्रुटिहीन सत्यनिष्ठा, मूल रूप से मर्म तक सन्निहित नैतिक मूल्यों के साथ अभियोज्य स्वतंत्रता पूर्ण अनिवार्यताएं हैं जो किसी भी समझौते को बर्दाश्त नहीं करती हैं। एक न्यायाधीश पूरी न्याय प्रणाली का स्तंभ है और जनता को न्यायिक कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति से वस्तुतः दोषरहित आचरण के माँग करने का अधिकार है। न्यायाधीशों को अपने पेशेवर और व्यक्तिगत जीवन दोनों में ईमानदारी के उच्चतम मानकों के लिए प्रयास करना चाहिए।*

15. *यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि न्याय की मांग करने वाले व्यक्ति को अधीनस्थ न्यायपालिका के स्तर पर न्याय वितरण प्रणाली का पहला प्रभावन होता है, और इस प्रकार अन्याय की भावना न केवल उस व्यक्ति पर गंभीर अप्रत्यक्ष प्रभाव डाल सकती है, बल्कि*

समाज में भी इसका प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि साधारण वादी को इस स्तर पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए और किसी वादी को ऐसा कोई प्रभाव नहीं दिया जा सकता है जो इसके विपरीत धारणा भी पैदा कर सके क्योंकि परिणाम बहुत हानिकारक हो सकते हैं। इसलिए न्यायिक अधिकारी के आचरण को निर्धारित करने के लिए मानक या मापदंड अनिवार्य रूप से सख्त होना चाहिए। ऐसा कहने के बाद, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह हर अनजाने में दोष या त्रुटियां नहीं है जो एक न्यायिक अधिकारी को दोषी बनाएगी। राज्य न्यायिक अकादमियों की इस संबंध में निस्संदेह एक शानदार भूमिका है। एक प्रामाणिक त्रुटियां के लिए सुधार और परामर्श की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन एक ऐसा आचरण जो सामान्य से परे एक धारणा पैदा करता है, उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। एक प्रशिक्षित कानूनी दिमाग के लिए, एक न्यायिक आदेश अपने लिए बोलता है।

43. उन्होंने आगे ***प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य जो(2010)10 एस सी सी 693*** में प्रतिवेदित किया गया है एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णित है के वाद का कंडिका 29 के विशिष्ट संदर्भ के साथ हवाला दिया है, जो निम्नानुसार हैः

"29. *कानून प्राधिकरण से यह आकलन करते हुए कर्मचारी के "पूरे सेवा रिकॉर्ड" पर विचार करने की अपेक्षा करता है कि क्या उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जा सकती है, इस तथ्य के बावजूद कि प्रतिकूल प्रविष्टियों के बारे में उसे सूचित नहीं किया गया था और उन*

प्रतिकूल प्रविष्टियों के बावजूद अधिकारी को पहले पदोन्नत किया गया था। इसके अलावा, अप्रत्यक्ष अतीत में भी एक अधिकारी की ईमानदारी के बारे में एक प्रतिकूल प्रविष्टि अनिवार्य सेवानिवृत्ति देने के लिए पर्याप्त है। न्यायिक पदाधिकारी के एक वाद पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक समिति, जिसका विधिवत गठन माननीय मुख्य न्यायाधीश ने किया है, द्वारा विचार किया जाता है एवं पुनः समिति का प्रतिवेदन पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखा जाता है। पूर्ण न्यायालय द्वारा मामले पर उचित विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया जाता है। इसलिए, मन का उपयोग न करने या दुर्भावनापूर्ण होने के आरोप लगाने की शायद ही कोई संभावना है।"

44. पैरा 28 में, फिर से माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

*"**28.** याचिकाकर्ता के उपरोक्त सेवा रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि वह अपने पूरे सेवा जीवन में एक औसत अधिकारी बने रहे और कभी सुधार नहीं कर सके। उनकी कार्य-मात्र खराब रही थी; उन्हें वर्ष 1999-2000 में उनकी ईमानदारी/प्रतिष्ठा के बारे में प्रतिकूल प्रविष्टियां दी गई थीं और 1997 और 2001-2002 में निरीक्षण करने वाले न्यायाधीशों द्वारा इस संबंध में टिप्पणी की गई थी। याचिकाकर्ता ने एक सुस्पष्ट दावा किया था कि प्रतिकूल प्रविष्टियों को अभी तक उन्हें सूचित नहीं किया गया है। उनके द्वारा बार-बार यह समर्पित किया गया है कि उक्त प्रतिकूल प्रविष्टियों के खिलाफ उनके द्वारा किए गए अभ्यावेदन का निपटारा नहीं किया गया था। निर्विवाद रूप से,*

अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए एक अधिकारी का आकलन करने के उद्देश्य से असंचारित प्रतिकूल प्रविष्टियों को ध्यान में रखा जा सकता है। याचिकाकर्ता ने यह खुलासा नहीं किया है कि किन तारीखों को प्रतिकूल प्रविष्टियों के विरुद्ध अभ्यावेदन किए गए थे। याचिकाकर्ता ने उक्त प्रतिकूल प्रविष्टियों को चुनौती नहीं दी थी, बल्कि उन्होंने केवल अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को चुनौती देना उचित समझा जो इस तरह की प्रतिकूल प्रविष्टियों का परिणामी प्रभाव रहा है।

45. विद्वान वकील ने आगे **एल. आर. एस. के माध्यम से राजेंद्र सिंह वर्मा (मृत) और अन्य बनाम उपराज्यपाल (दिल्ली का एन. सी. टी.) और अन्य में जो (2011)10 एस सी सी 1** प्रतिवेदित किया गया के बाद का हवाला दिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायिक सेवा रोजगार के अर्थ में सेवा नहीं है जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। न्यायाधीश संप्रभु न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने कार्यों का निर्वहन करते हैं। उनकी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा संदेह से परे होने की उम्मीद है। न्यायिक समीक्षा की प्रकृति ऐसी है कि यह संदिग्ध सत्यनिष्ठा वाले व्यक्तियों या जिन्होंने अपनी उपयोगिता खो दी है, उनकी सेवा में निरंतरता को सहन नहीं कर सकती है। आदेश का पैरा 82 इस प्रकार हैः

"82. *जैसा कि इस न्यायालय द्वारा चंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य में समझाया गया है, अनिवार्य सेवानिवृत्ति की शक्ति का प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है और इस संबंध में अनुच्छेद 235 के तहत शक्ति किसी भी नियम या आदेश द्वारा किसी भी तरह से सीमित नहीं है। इस न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय में जो समझाया गया है वह यह है कि भारत का संविधान का अनुच्छेद 235*

उच्च न्यायालय को किसी भी समय किसी भी न्यायिक अधिकारी के प्रदर्शन का आकलन करने में सक्षम बनाता है ताकि(ब्लैक शीप) काले भेड़ को अनुशासित किया जा सके या(डेड वूड को विड आउट) मृत लकड़ी को निकाला जा सके और उच्च न्यायालय की इस संवैधानिक शक्ति को किसी भी नियम या आदेश द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता है।"

46. पैरा 182 में न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित कियाः

182. प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार करने पर, इस न्यायालय ने पाया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक सेवा की प्रकृति ऐसी है कि उच्च न्यायालय संदिग्ध सत्यनिष्ठा वाले व्यक्तियों की सेवा में बने रहने का जोखिम नहीं उठा सकता है। इसलिए, बॉम्बे उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार बनाम शिरीषकुमार रंगराव पाटिल मामले में इस क्षेत्राधिकार ने इस बात पर जोर दिया कि यह आवश्यक है कि संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अधीनस्थ न्यायपालिका और आत्म-आत्मनिरीक्षण पर निरंतर निगरानी रखी जानी चाहिए।

47. इसके अलावा, ***केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम उच्च न्यायालय (जी. डी.) ओम प्रकाश में जो (2022) 5 में रिपोर्ट किया एस. सी. सी. 100,*** में प्रतिवेदित किया गया के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय ने यह निर्णय देते हुए गलती की कि केवल इसलिए कि कुछ अवधि के लिए सकारात्मक ए. सी. आर. थे और पदोन्नति भी दी गई थी कि पदोन्नति की तारीख से पहले लगाए गए सभी नकारात्मक ए. सी. आर. और दंड, और असंचारित प्रतिकूल टिप्पणियों को नजरअंदाज किया जाना चाहिए।

48. *पैरा 3,4 और 7 में यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया हैः*

3. इस तरह के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका में, उच्च न्यायालय ने समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को इस आधार पर दरकिनार कर दिया कि रिट याचिकाकर्ता को 14.06.2000 को हेड कांस्टेबल के रूप में पदोन्नत किया गया था और इस प्रकार वर्ष 2000 से पहले लगाए गए दंड को रिट याचिकाकर्ता को सेवा में बनाए रखने की उपयुक्तता का निर्धारण करते समय नजरअंदाज किया जाना चाहिए। ड्यूटी पर सोने और दो दिन से अधिक समय तक अवकाश् पर रहने के दो दंड क्रमशः वर्ष 2005 और 2008 में लगाए गए थे जो मामूली दंड थे। पिछले पाँच वर्षों में रिट याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट ("ए. सी. आर".)का श्रेणीकरण के तथ्य पर ध्यान देते हुए अधिक ध्यान देने के साथ विचार किया जाना चाहिए कि पहले के ए. सी. आर. को भी ध्यान में रखा जाना था। 1990 से 2009 तक एसीआर या तो अच्छे थे या बहुत अच्छे थे। वर्ष 2010 के लिए ए. सी. आर. को औसत श्रेणीबद्ध किया गया था लेकिन इसे रिट याचिकाकर्ता को नहीं बताया गया था। इसलिए, इस तरह के ए. सी. आर. को इस राय पर पहुंचने पर ध्यान में नहीं रखा जा सकता है कि रिट याचिकाकर्ता एक(डेड वूड) मृत लकड़ी है। उच्च न्यायालय ने बैकुंथा नाथ दास बनाम जिला चिकित्सा अधिकारी मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का उल्लेख किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश कोई दंड नहीं है। इसका मतलब कोई कलंक नहीं है और न ही दुर्व्यवहार का कोई सुझाव है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश जनहित

में है और सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया जाता है और न्यायालय द्वारा केवल इस कारण से रद्द करने के लिए उत्तरदायी नहीं है कि असंचारित प्रतिकूल टिप्पणियों को ध्यान में रखा गया था।

4. इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम एम. ई. रेड्डी मामले में इस न्यायालय के पहले के फैसले को मंजूरी दी, जिसमें यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः(एस. सी. सी. पी. 22, पैरा 12)

"12. एक ओर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश सरकारी कर्मचारी के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं करता है जिसे पूर्ण पेंशन और अन्य लाभों का आनंद लेते हुए एक आरामदायक जीवन जीने के लिए बनाया जाता है और दूसरी ओर सेवाओं को एक नयी संजीवता और समानता देता है। कर्मचारियों को इस नियम के पीछे की सच्ची भावना को समझने की कोशिश करनी चाहिए जो उन्हें दंडित करने के लिए नहीं है, बल्कि देश के व्यापक हित में की गई सेवा की एक हितकर घटना है। भले ही कर्मचारी को लगता है कि उसने पीड़ा झेली है, उसे इस तथ्य से पर्याप्त तसल्ली और सांत्वना मिलनी चाहिए कि यह उसके देश के लिए उसका छोटा सा योगदान है, क्योंकि हर अच्छे कारण के लिए वह शहीद हो जाता है।"

7. इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ भारत संघ बनाम दुलाल दत्त में प्रतिवेदित, ने भारतीय रेलवे में स्टोर नियंत्रक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की जांच की। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड का आदेश नहीं है।

यह सरकार का विशेषाधिकार है लेकिन यह सामग्री पर आधारित होना चाहिए और इसे सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया जाना चाहिए और यह कि यह एक बोलने वाला आदेश होने की आवश्यकता नहीं है। ----------(एस. सी. सी. पीपी. 184-85, पैरा 18)

"18. यह ध्यान दिया जाएगा कि न्यायाधिकरण ने मामले की परिस्थितियों में यह मानते हुए पूरी तरह से गलती की कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए एक बोलने वाला आदेश होना चाहिए था। यह न्यायालय बार-बार आर. एल. बुटेल बनाम भारत संघ और भारत संघ बनाम जे. एन. सिन्हा के अधिकार पर जोर देता रहा है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड का आदेश नहीं है। यह वास्तव में सरकार का विशेषाधिकार है लेकिन यह सामग्री पर आधारित होना चाहिए और इसे सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया जाना चाहिए। बहुत बार, न्यायालय द्वारा जाँच करने पर सरकार सामग्री का खुलासा कर सकती है लेकिन यह इस कहावत से बहुत अलग है कि आदेश एक बोलने वाला आदेश होना चाहिए। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के किसी भी आदेश को बोलने वाले आदेश के रुप में रहने की आवश्यकता है। न्यायाधिकरण के आदेश से ही यह स्पष्ट है कि सरकार के पास, उसके समक्ष, समीक्षा समिति की रिपोर्ट थी, फिर भी उसने प्रत्यर्थी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना उचित समझा। इस आदेश को कानूनी रूप से दुर्भावनापूर्ण या मनमाना नहीं कहा जा सकता है।"

49. हमने दोनों रिट याचिकाओं के तथ्यों, अभिलेख पर सामग्री के साथ-साथ विद्वान वरिष्ठ वकील श्री राजेंद्र नारायण के साथ-साथ याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री

मुकुल सिन्हा और पटना उच्च न्यायालय का प्रतिनिधित्व करने वाले श्री सत्यबीर भारती द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों को भी देखा है।

50. याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ आरोप लगाए गए थे जब वह अवर न्यायाधीश -VIII, सिवान के रूप में तैनात थे। तत्कालीन जिला और सत्र न्यायाधीश, सीवान ने 2007/08 अवधि के लिए वार्षिक गोपनीय अभिलेख में कुछ प्रतिकूल टिप्पणियां व्यक्त कीं। उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिनिधित्व को प्राथमिकता दी। इसके बाद, पटना उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही करने का प्रस्ताव रखा। उनके खिलाफ विभिन्न स्वामित्व मुकदमों से संबंधित छह आरोप बनाए गए थे और उनके खिलाफ आरोप में उनकी अदालत में लंबित स्वामित्व मुकदमों से संबंधित धन की मांग के साथ-साथ तारीखों पर आदेश पारित करना भी शामिल था, मामले को बहस के लिए तय किया गया था। एक स्वत्व वाद में देरी करने के लिए एक और आरोप लगाया गया था। इसके बाद विभागीय कार्यवाही की गई और जबकि धन की मांग से संबंधित आरोप सं. 1,2 एवं 6 प्रमाणित नहीं हुए हैं एवं जहाँ तक क्रमशः स्वत्व वाद सं.97/1990, स्वत्व वाद सं. 265/85 एवं स्वत्व वाद सं. 12/2003 का आरोप सं. 3,4, एवं 5 से संबंध है उसे प्रमाणित पाया गया।

51. इसके पश्चात् दिनांकित 14.07.2011 का कारण बताओ एवं दिनांकित 16.05.2011 का जाँच प्रतिवेदन संलग्न किया गया। याचिकाकर्ता ने 23.07.2011 के अपने कारण बताओ के माध्यम से जवाब दिया जिसके पश्चात् पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा ज्ञाप सं. 15080, दिनांकित 15.09.2011 जारी किया गया जिसके द्वारा उसका निलंबन आदेश दिनांकित 12.02.2019 इस टिप्पणी के साथ रद्द किया गया कि वह निलंबन की अवधि में निर्वहन भत्ते को छोड़कर किसी सेवा लाभ/मैट्रिक लाभ प्राप्त करने के हकदार नहीं होंगे। उन्हें आगे अपने पद पर शामिल होने का निर्देश दिया गया और उन्होंने

उसी दिन अर्थात् 16.09.2011 को ही अवर न्यायाधीश -3, सुपाल के रूप में अपना कर्तव्य फिर से शुरू कर दिया। इसके अलावा, पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक द्वारा दिनांकित 19.09.2011 के पत्र के माध्यम से, उनके खिलाफ स्थायी प्रभाव से एक चरण के वेतन में कमी का दंड आदेश पारित किया गया था।

52. याचिकाकर्ता ने 2012 के सी. डब्ल्यू. जे. सी. संख्या 3614 में उक्त आदेश को चुनौती दी।

53. हमने उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों, उनके खिलाफ एवं जाँच प्रतिवेदन का भी अध्ययन किया है। हम संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध एवं दोषरति विभागीय कार्यवाही की गई है जैसा कि पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक ने ज्ञाप सं.6123, दिनांक 16/17-2009 के माध्यम से उन्हें विभागीय कार्यवाही के प्रस्ताव के बारे में सूचित करते हुए, उन्हें आरोपों के बयान, दस्तावेजों की सूची एवं गवाहों की सूची भी प्रदान की। इसके अलावा, उन्हें पर्याप्त अवसर दिया गया और उसके बाद ही, पूछताछ अधिकारी ने पटना उच्च न्यायालय के महानिबंधक को 16.05.2011 को अपनी रिपोर्ट समर्पित की, जिसके बाद याचिकाकर्ता को दिनांकित 16.05.2011 की जांच रिपोर्ट के साथ 04.07.2011 के कारण बताए जाने पर रखा गया और अंत में सजा का आदेश पारित किया गया।

54. हालाँकि इस न्यायालय को याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों में जाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन अपनी संतुष्टि के लिए, हमने स्वत्ववाद संख्या 97/1990 (आरोप संख्या 3 से संबंधित) के साथ ही स्वत्व वाद सं. 12/2003 (आरोप सं. 5) के आदेश पक्षों को देखा।

55. टी. एस. नं. 97/1990 के दिनांकित 29.07.2008 आदेश पत्र में, आदेश ने स्पष्ट रूप से दिखाया कि इसे 29.07.2008 के लिए स्थगित कर दिया गया था। हालाँकि, गुप्त रूप से, उसके बाद दो अतिरिक्त शब्द "न्याय के लिए" शामिल किए गए। निश्चित रूप

से, यह आरोप कि बहस की तारीख पर, जल्दबाजी में, एक आदेश अप्रत्यक्ष कारण से पारित किया जाना निराधार नहीं है/नहीं था।

56. पुनः आरोप सं. 5 टी. एस. सं. 12 /2003 से संबंधित, 13.08.2008 को तर्क के लिए मामला तय किया गया था। हालांकि, पहली पंक्ति के शीर्ष पर, दो अतिरिक्त शब्द 'न्याय के लिए' सामने आए। इस प्रकार, कम से कम चार्ज सं3 और 5 जिनका हमने अध्ययन किया, जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्ष पूरी तरह से उचित थे।

57. उपरोक्त परिस्थितियों में, उत्तरदाताओं द्वारा स्थायी प्रभाव के साथ एक चरण का वेतन में कमी के लिए आदेश पारित करने का निर्णय उचित है एवं इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

58. सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 3614/2021 बिना किसी योग्यता के है और अस्वीकार किए जाने के योग्य है।

59. याचिकाकर्ता के खिलाफ सजा का आदेश पारित होने के बाद, उसके पूरे सेवा रिकॉर्ड को इस बात पर विचार करने के लिए बुलाया गया था कि क्या उसे जनहित में सेवा से सेवानिवृत्त होने की आवश्यकता है। हमने याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड को शामिल किया है। वह 13.09.1988 को न्यायिक सेवा में शामिल हुए। जिला न्यायाधीशों की 1994-95 और 1996-97 की भी टिप्पणियों से पता चलता है कि वे औसत योग्यता और प्रतिष्ठा वाले अधिकारी थे। फिर से, वर्ष 2001-02 में, यह टिप्पणी की गई कि वह एक औसत अधिकारी थे और ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा के संबंध में अच्छी प्रतिष्ठा का आनंद नहीं लेते थे और उसे निगरानी में रखने की आवश्यकता है।

60. याचिकाकर्ता के लिए निष्पक्ष होने के लिए, वर्ष 2003-04 में एक बार में एक बार के लिए, उसे 'अच्छे अधिकारी' की टिप्पणी दी गई थी, लेकिन उसके बाद, वह एक औसत अधिकारी पाया गया। फिर से, वर्ष 2007-08 में, उनकी सत्यनिष्ठा संदिग्ध पाई गई।

61. जहाँ तक निरीक्षण करने वाले न्यायाधीश की टिप्पणियों का संबंध है, मई, 2003 में, उन्हें औसत से कम का अधिकारी पाया गया था और माननीय निरीक्षण करने वाले न्यायाधीश ने टिप्पणी की थी कि उन्हें काफी सुधार की आवश्यकता है।

62. उस पृष्ठभूमि में, स्थायी समिति ने दिनांक 22.09.2011 की अपनी बैठक में उनके पूरे सेवा रिकॉर्ड के निर्धारण और मूल्यांकन पर 'सेवा संहिता' के नियम 74 (बी) (ii) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जनहित में सेवा से उनकी सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने का संकल्प लिया। 63. पूर्ण न्यायालय के प्रस्ताव द्वारा इसकी पुष्टि की गई और कार्यालय पत्र संख्या 1827, दिनांकित 18.11.2011 के माध्यम से सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार पटना को सूचित किया गया। जो राज्य सरकार की अधिसूचना सं. 7/1-5-05/2011 एसए 2243 दिनांकित 09.02.2012 का अनुसरण किया जिसे सीडब्ल्यूजेसी सं. 11113/2019 में चुनौती दी गई है।

64. राम मूर्ति यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य (ऊपर) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया कि कर्मचारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की गुंजाइश तब तक बेहद सीमित है जब तक कि यह मनमौजी, दुर्भावनापूर्ण, प्रासंगिक भौतिक तथ्यों को नजरअंदाज करने वाला या नजरअंदाज करने वाला नहीं पाया जाता है और न्यायालय न्यायिक समीक्षा का प्रयोग करते हुए इस पर निर्णय नहीं दे सकता है।

65. इसके अलावा, **प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य और अन्य (ऊपर)** मामले में फिर से माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अप्रत्यक्ष अतीत में

एक अधिकारी की सत्यनिष्ठा के संबंध में एक भी प्रतिकूल प्रविष्टि अनिवार्य सेवानिवृत्ति प्रदान करने के लिए पर्याप्त है क्योंकि एक न्यायिक अधिकारी के मामले को समाज के अन्य अंगों से अलग तरीके से माना जाना चाहिए क्योंकि वह अलग क्षमता में राज्य की सेवा कर रहा है। माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा विधिवत गठित न्यायाधीशों की समिति द्वारा निर्णय लिया जा रहा है जिसे पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखा जाता है और उक्त विचार-विमर्श के बाद मन का अनुप्रयोग करने की या बदनीयता को कोई संभावना नहीं हो सकती है।

66. जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा **नंद कुमार वर्मा बनाम झारखंड और अन्य (ऊपर)** के मामले में निर्णय का हवाला का संबंद्ध है, उस वाद में, उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने स्पष्टीकरण स्वीकार करने के पश्चात् सूचित किया है कि इसे स्वीकार कर लिया गया है और आरोप बंद कर दिया गया है। अदालत ने देखा कि हालांकि जांच अधिकारी ने इस पर ध्यान दिया था, लेकिन उन्होंने कोई निष्कर्ष नहीं दिया। उस पृष्ठभूमि में, न्यायालय ने मामले में हस्तक्षेप किया। याचिकाकर्ता का मामला निश्चित रूप से उस श्रेणी में नहीं आता है।

67. पुनः जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा **मोहिन्दर सिंद गिल एवं एक अन्य बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नई दिल्ली (ऊपर)** के वाद का हवाला का संबंध है। यह भी उनके बचाव में नहीं आता है क्योंकि उत्तरदाताओं ने मामले को उसी तरह रखा है जैसे विभागीय कार्यवाही की गई थी और/या 'आदेश पारित' किया गया था। इसे बेहतर नहीं किया गया है और/या कोई अतिरिक्त आधार आगे नहीं रखा गया है।

68. मोहिंदर सिंह गिल भी अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश पर लागू नहीं होते हैं। लोक हित पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश में कोई आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए क्योंकि यह एक गैर-कलंकित आदेश है। यह कदाचार के किसी भी आरोप पर आधारित नहीं है और न ही यह जुर्माना लगाया गया है। लोक हित पर अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने के

निर्णय पर पहुंचने के लिए नियोक्ता द्वारा अधिकारी के समग्र आचरण और उसके कर्तव्यों के निर्वहन की जांच की जाती है। उस मामले में एकमात्र आवश्यकता सेवा अभिलेखों से यह साबित करना है कि नियोक्ता जनहित पर ऐसा करने में पूरी तरह से उचित था। तत्काल मामले में सेवा अभिलेख कार्रवाई को काफी उचित ठहराते हैं।

69. पुनः **एच. सी. गार्गी बनाम हरियाणा राज्य (ऊपर)** के उसी मामले में, अपीलार्थी का सेवा रिकॉर्ड वर्ष 1964-65 से वर्ष 1981-82 तक अच्छा था और सेवानिवृत्ति के कगार पर, राज्य सरकार ने उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का निर्देश दिया जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय का समर्थन नहीं मिला। इसके विपरीत, याचिकाकर्ता के पूरे सेवा जीवन के मामले में, या तो उसका औसत मूल्यांकित किया गया था और/या उसकी ईमानदारी संदिग्ध पाई गई थी। केवल एक वर्ष के लिए उन्हें अच्छी टिप्पणियां दी गईं। इस प्रकार, यह मामला भी उनके बचाव में नहीं आता है।

70. हम **भारत संघ एवं एक अन्य बनाम इंद्रजीत राजपूत जो 1990 (पूरक) एस सी सी 796** में प्रतिवेदित किया गया के वाद में माननीय शीर्ष न्यायालय के आदेश का भी ध्यान रखा है जहाँ माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कई वर्षों के खंड के लिए प्रतिकूल अभिलेख संबंधित कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के प्रामाणिक निर्णय का आधार हो सकता है और यह केवल उक्त अवधि के अंत में वर्ष के लिए एक एकल अच्छी प्रविष्टि के कारण न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन नहीं हो सकता है। संबंधित पैराग्राफ पैराग्राफ कंडिका सं. 7,8, एवं 9 में शामिल पाये गये एवं निम्नानुसार पढ़े जाते हैः-

> *"7. हमारी राय में, उत्तरदाता के सेवा अभिलेख से कमरी समग्र तस्वीर और विशेष रूप से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश से तुरंत पहले की अवधि के लिए जिसके आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति*

के आदेश की वैधता का निर्णय लिया जाना है और उनकी निलंबन अवधि समाप्त होने के बाद वर्ष 1985 के लिए एकमात्र अच्छी प्रविष्टि उपरोक्त पृष्ठभूमि में निर्णायक नहीं हो सकती है। सेवा अभिलेख के आधार पर न्यायाधिकरण के आदेश में उल्लिखित उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि वर्ष 1985 के लिए एकल अच्छी प्रविष्टि के अलावा कम से कम 1980 में प्रतिकूल प्रविष्टि के साथ शुरू होने वाली पूरी अवधि के लिए प्रतिकूल अभिलेख अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश का समर्थन करने के लिए प्रासंगिक सामग्री थी। इस बीच 1981 में तीन वेतनवृद्धि रोकने की सजा के साथ-साथ 1982 में प्रत्यर्थी के खिलाफ उसके आचरण के लिए एक अदालत द्वारा पारित सख्ती भी थी, जिसे उसने प्रयोजन के लिए अवसर दिए जाने के बावजूद विभागीय अधिकारियों को भी समझाने का प्रयास नहीं किया। इसके अलावा, अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ उनका असंयमित और अशोभनीय आचरण एक जांच को जन्म दे रहा था, जिसे तभी हटा दिया गया जब उन्हें अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया गया था। शुद्ध परिणाम यह है कि वर्ष 1985 के लिए अच्छी प्रविष्टि प्रत्यर्थी के सेवा अभिलेख में प्रासंगिक अवधि के दौरान प्रतिकूल सामग्री से कहीं अधिक है। इसलिए, मामले के समग्र दृष्टिकोण पर, न्यायाधिकरण प्रत्यर्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द करने में उचित नहीं था।

8. न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय के लिए वास्तविक प्रश्न था:क्या सक्षम प्राधिकारी का इस सामग्री पर बनायी अपनी राय के आधार पर प्रत्यर्थी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का प्रामाणिक

निर्णय उसके द्वारा दरकिनार किए जाने के लिए उत्तरदायी था?यह इस परिप्रेक्ष्य में है कि न्यायाधिकरण को मामले पर विचार करना और निर्णय लेना था। जाहिर है, न्यायाधिकरण सही परिप्रेक्ष्य की अनदेखी करने की त्रुटियां में पड़ गया।

9. नतीजतन, अपील की अनुमति दी जाती है। न्यायाधिकरण के विवादित आदेश को इस परिणाम के साथ दरकिनार कर दिया जाता है कि प्रतिवादी के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को बहाल कर दिया जाता है।"

71. पुनः यह न्यायालय **राजिंदर गोयल बनाम पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय एवं एक अन्य जो (2021) 9 एस सी सी** में प्रतिवेदित किया गया के वाद में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को अभिलेख पर रखना चाहेंगे, जिसमें उसके बैंक खाते से अनियमित जमा/निकासी, उसे दोषरहित करने वाली निगरानी/अनुशासनात्मक समिति के प्रतिवेदनों को अस्वीकार करना उचित मानने के आधार पर, उसे अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश के पद से याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करता है क्योंकि सतर्कता/अनुशासनात्मक समिति का निर्णय/रिपोर्ट पूर्ण न्यायालय लिए बाध्यकारी नहीं है और पर्याप्त राशि के जमा और निकासी को दर्शाने वाले कई लेनदेन पर विचार करते हुए, पूर्ण न्यायालय का यह विचार रखना पूरी तरह से उचित है जो इसने किया प्रासंगिक कंडिका सं. 11,12 एवं 13 में शामिल पाए गए।

"11. निर्णय के पैरा 18 से उद्धृत भाग से पता चलता है कि यह न्यायालय स्वीकार करता है कि प्रशासनिक कार्य करने की सुविधा के लिए और अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण से संबंधित दिन-प्रतिदिन के मामलों के सुचारू संचालन के लिए, उच्च न्यायालय

के लिए यह संभव होगा कि वह किसी प्रशासनिक न्यायाधीश या न्यायाधीशों की प्रशासनिक समिति को न्यायालय की ओर से कार्य करने के लिए अधिकृत और सशक्त करे। यह उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए न्यायालय के नियम, 1952 के अध्याय III के नियम 1 के संदर्भ में प्रशासनिक समिति के पक्ष में इस तरह के विशिष्ट प्राधिकरण के संदर्भ में था कि प्रशासनिक समिति द्वारा की गई सिफारिशें बिना किसी संवैधानिक दुर्बलता के पाई गईं।

12. हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि समिति को अधिकृत या सशक्त बनाने वाले नियमों के अभाव में भी, समिति द्वारा किए गए निर्णय या प्राप्त किए गए निष्कर्ष पूर्ण न्यायालय के लिए बाध्यकारी होंगे या यह कि पूर्ण न्यायालय मामले में एक अलग दृष्टिकोण लेने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र में नहीं होगा। इसलिए, श्री स्वरूप द्वारा अग्रसारित निवेदन को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

13. अभिलेख पर तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और इस बात का संकेत देने वाले अभिलेख को ध्यान में रखते हुए कि पर्याप्त राशि की जमा एवं निकासी दिखाने वाले कई लेनदेन हुए थे, यह नहीं कहा जा सकता है कि पूर्ण न्यायालय का यह विचार उचित नहीं था जो उसने ऐसा किया। हम इस मामले में अलग दृष्टिकोण रखने का कोई कारण नहीं पाते हैं।"

72. अभिलेख पर उपरोक्त तथ्यों/सामग्रियों के साथ-साथ यहां ऊपर देखे गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय भी हमें केवल एक निष्कर्ष पर ले जाते हैं।

याचिकाकर्ता को सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का उच्च न्यायालय का निर्णय पूरी तरह से उचित है और दूसरी रिट याचिका भी खारिज किए जाने के योग्य है।

73. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वकील द्वारा समर्पित निवेदन के संबंध में उसे तीन महीने का नोटिस वेतन नहीं दिया गया है, वह निश्चित रूप से नोटिस वेतन का हकदार है। यदि इसका भुगतान अभी तक नहीं किया गया है, तो दो महीने के भीतर किसी भी दर पर तुरंत भुगतान किया जाएगा।

74. 2012 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 3614 एवं 2013 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 11133 ख़ारिज किया जाता है।

(के. विनोद चंद्रन, मुख्य न्यायमूर्ति)

(राजीव रॉय, न्यायाधीश)

जगदीश/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।